महाभारत और पुरातत्व

पी. के. बसंत एवं सी. एन. सुब्रह्मण्यम

अब तक पिछली तीन किश्तों में हमने पढ़ा कि महाभारत के कई अलग-अलग संस्करण उपलब्ध हैं। महाभारत में ही कहा गया है कि यह कथा कुछ लोग विस्तार से तो कुछ लोग संक्षेप में कहते हैं तथा ये दोनों कथानक सही हैं। बीसवीं सदी में कई विद्वानों ने मिलकर महाभारत का समालोचनात्मक संस्करण तैयार किया। इसमें उस महाभारत के पुनःनिर्माण का प्रयास किया गया जो संभवतः चौथी-पांचवीं सदी में लिखित रूप में सामने आया।
महाभारत के समालोचनात्मक संस्करण का अध्ययन करने से पता चलता है कि इसमें अलग-अलग युगों के वृतांत सम्मिलित हैं। कुछ वर्णन तो ऐसे युग से जुड़े हैं जब शहर नहीं उभरे थे और गोपालन ही लोगों का मुख्य पेशा था। राजाओं के पास सम्पत्ति के रूप में गाय के अलावा और कुछ नहीं था। दूसरी तरफ ऐसे भी वृतांत मिलते हैं जिनमें विकसित शहरों का वर्णन है।
इस बार हम महाभारत से जुड़े हुए स्थलों में हुई खुदाई और उनसे मिली जानकारी की चर्चा करेंगे।

प्राचीन गाथाओं या महाकाव्यों का सत्यापन करने के उद्देश्य से कई देश के लोग पुरातात्विक साक्ष्यों की मदद लेने का प्रयास करते आए हैं। यूनानी महाकाव्य, इलियड और ऑडेसी में उल्लेख किये गये स्थलों, खासकर ट्रॉय, का उत्खनन सन् 1870 के दशक में हुआ। उसमें इस बात की पुष्टि हुई कि वह स्थल बहुत ही प्राचीन है। होमर की गाथा के समय वह बस्ती एक विकसित शहर थी, इसके भी साक्ष्य मिले। लेकिन क्या वास्तव में उस गाथा में

वर्णित घटनाएं घटीं और उस युद्ध में ट्रॉय का अंत हुआ, इस बात की पुष्टि पुरातत्व से नहीं हो पाई। यही नहीं, होमर द्वारा वर्णित शहर और पुरातत्वीय उत्खनन से उभरे शहर में काफी अंतर था। इसलिए मज़ाक में कुछ इतिहासकारों ने कहा, "या तो श्लिमान के ट्रॉय में कुछ गड़बड़ है या होमर के ट्रॉय में कुछ गड़बड़ है।" लेकिन यह ज़रूर है कि हम उस कांस्ययुगीन समाज की कल्पना करने में इन पुरातात्विक जानकारियों का भी उपयोग कर सकते हैं। हम इलियड की भौतिक पृष्ठभूमि को समझने के लिए पुरातत्व का उपयोग कर सकते हैं मगर यह कभी पता नहीं कर सकते कि क्या वास्तव में हेलन नामक सुन्दरी थी और क्या काष्ठ घोड़े में छिपे सैनिकों ने ट्रॉय का विध्वंस किया। हो सकता है कि यह सब होमर की कल्पना मात्र थी।


ट्रॉय शहर के विध्वंस में प्रमुख भूमिका निभाने वाले लकड़ी के घोडे की, बाद में बनाई गई एक प्रतिकृति।

1947 के बाद भारत में भी महाभारत से जुड़े स्थानों की खुदाई होने लगी। पुराशास्त्री यह जानना चाहते थे कि क्या उन जगहों में प्राचीन बसाहटें थीं, और यदि हां तो कितनी पुरानी और क्या उनमें महाभारत काल के संबंध में कोई साक्ष्य मिल सकता है। पहले हम पुरातत्व के बारे में कुछ समझ लें ताकि हम देख सकें कि उसकी मदद से हमें किस तरह की जानकारी मिल सकती है और किस तरह की नहीं।

I

पुरातत्व

पुरातत्व इतिहास का हिस्सा माना जाता है। पुरातत्ववेत्ता प्राचीन स्थलों की खुदाई करते हैं। इसके पीछे यह समझ काम करती है कि मनुष्य प्रकृति से प्राप्त वस्तुओं को कृत्रिम रूप देकर उसका प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए मिट्टी से वे अलग-अलग प्रकार के कच्चे और पक्के बर्तन और खिलौने बनाते हैं। उसी मिट्टी से वे ईंटें बनाते हैं, जिनसे वे घर बनाते हैं। घरों का समूह गांव और शहर बनाता है। पत्थर को काट-तराश कर वे तरह-तरह के उपकरण और औज़ार बनाते हैं।

पेड़-पौधों से वे घर, दरवाज़े, तीर-धनुष, टोकरियां, दवाएं, कपड़े और पता नहीं क्या-क्या बनाते हैं। चाहे वह पत्थर का उपकरण हो या रेलगाड़ी या रॉकेट - ये सारी चीज़ें प्राकृतिक सामग्री को कृत्रिम रूप देकर तैयार की गई हैं।

मनुष्य जहां भी रहते हैं वे कृत्रिम चीज़ों के अवशेष छोड़ जाते हैं। टूटे-फूटे बर्तन या फटे कपड़े लोग फेंक देते हैं। यही चीज़ें पुराविदों के लिए जानकारी का स्रोत बन जाती हैं।

अक्सर ऐसा पाया गया है कि लोग अपने घर, बस्तियों के खास हिस्से में बनाते हैं। यह हिस्सा खेत-खलिहान से अलग किसी ऊंचे से भाग में होता है। वे ऐसा इसलिए करते हैं कि ऊंचे भाग में पानी जमा नहीं होता। एक बार बस्ती बन जाने पर लोग पुश्त-दर-पुश्त वहीं घर बनाकर रहते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उनके भाई-बन्धु और रिश्तेदार भी आसपास के घरों में रहते हैं। जब बस्ती में किसी का मकान पुराना होकर, गिरने की हालत में आ जाता है तो लोग उसी जगह पर नया मकान बनाते हैं। पुराने घर की दीवारों का मलबा जमा कर वे मकान की ज़मीन को ऊंचा करते हैं। इस तरह समय के गुज़रने के साथ-साथ खेत-खलिहान की अपेक्षा बस्ती की ऊंचाई ज़्यादा होती चली जाती है। (ट्रॉय के बारे में बताया जाता है कि वहां एक ही जगह नौ बार घर बनाया गया और हर बार पुराने घर के फर्श के ऊपर नया घर बनाया गया था।) कौन गांव कितना पुराना है यह पता लगाने का एक आसान तरीका है खेत खलिहान से बस्ती की ऊंचाई को देखना। जो बस्ती जितनी ऊंची होगी, उसकी उतनी ज़्यादा पुरानी होने की संभावना है।

पुरातत्व की कुछ सीमाएं हैं। भारत के इतिहास में ई.पू. तीसरी सदी के सम्राट अशोक के पहले का काल अनाम लोगों का समय था। ऐसा इसलिए है क्योंकि अशोक के पहले के काल की लिखित सामग्री हमें सिर्फ हड़प्पा सभ्यता से मिलती है। उसे अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है। हड़प्पा सभ्यता लगभग सतरह सौ ई.पू. में नष्ट हो गई। उसके बाद लगभग 1400 वर्षों तक कोई लिखित सामग्री नहीं मिलती। मतलब यह कि पुरातत्व हमें यह नहीं बता सकता कि इस युग के शहरों गांवों या प्रदेशों का नाम क्या था। यह एक मूक विश्व है जो हमें यह तो बताएगा कि लोग क्या खाते थे, किन अस्त्रों से लड़ते थे, कैसे घरों में रहते थे, लेकिन यह नहीं बताएगा कि उन लोगों के नाम क्या थे।

II

साक्ष्यों की खोज

जब पुराविदों ने महाभारत से जुड़े साक्ष्यों की खोज शुरू की तो सबसे पहला काम था महाभारत में वर्णित जगहों को पहचानना। यह कोई आसान काम नहीं था। उदाहरण के लिए महाभारत का इंद्रप्रस्थ आज की दिल्ली मानी जाती है।

इन दोनों नामों में कोई समानता नहीं। महाभारत में वर्णित नदियां और जगहें अलग-अलग इलाकों में पाई जाती हैं। एक सिन्धु नदी आज के पाकिस्तान में है तो काली सिन्ध मध्यप्रदेश में। पुराविद् जगह-जगह घूमकर उन जगहों को पहचानने की कोशिश करते हैं, जिनके नाम प्राचीन पुस्तकों में लिखे हैं। पहचान के लिए वे स्थानीय परम्पराओं, तत्कालीन पुस्तकों और अभिलेखों में दी गई भौगोलिक जानकारियों और खुदाई में प्राप्त अवशेषों का मिलान करते हैं। उदाहरण के लिए राजा हर्षवर्धन के ज़माने में श्वान त्सांग (ह्वेन सांग) नाम के चीनी बौद्ध भिक्षु भारत आए। उन्होंने बौद्ध धर्म से जुड़े महत्वपूर्ण स्थलों की यात्रा की। वे न सिर्फ उन जगहों का वर्णन करते हैं बल्कि यह भी बताते हैं कि कौन-सी जगह किस जगह से किस दिशा में कितनी दूरी पर स्थित है।

प्राचीन भारत से जुड़े स्थानों की खोज सन् 1810-20 के आसपास यूरोप के कुछ विद्वानों ने शुरू की। आजकल सब जानते हैं कि बोधगया में बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ था। यह बात भी भारतीय ज्ञान परम्परा से विस्मृत हो गई थी। कुछ अंग्रेज़ विद्वानों ने 1810-20 के दशकों में बोध गया और सारनाथ की यात्राएं कीं। इससे



हस्तिनापुर टीले का एक विहंगम दृश्य। सामने की ओर खुदाई से प्राप्त मिट्टी के बर्तन के टुकड़ों को विधिवत जमाने वाले पॉटरी यॉर्ड हैं।

यह तो पता चला कि इन जगहों का रिश्ता बौद्ध धर्म से है लेकिन इन जगहों का खास महत्व क्या है यह पता नहीं चला। 1836 में यूरोप के कुछ विद्वानों ने दो चीनी यात्रियों फा-शियान (फा हियान) और श्वान त्सांग (ह्वेन सांग) की भारत यात्रा के वृतांत का अनुवाद किया। इन्हीं के चलते बोधगया, सारनाथ आदि की सही पहचान हो पाई।

श्वान त्सांग के यात्रा विवरण का इस्तेमाल किया प्रसिद्ध अंग्रेज़ पुरातत्वविद् अलैक्ज़ैंडर कनिंघम ने। उन्होंने 1861 में बोधगया से अपनी खोज यात्राएं शुरू कीं। इन यात्राओं का परिणाम था तक्षशिला (गांधार की राजधानी, जहां के गांधारी और शकुनी थे), अहिछत्र (पांचालों की राजधानी, जहां की द्रौपदी थी), विराट (जहां पांडवों ने अज्ञातवास किया), जैसी जगहों की पहचान होना। कौरवों की राजधानी हस्तिनापुर का किसी को पता नहीं था। कनिंघम ने इसे मेरठ ज़िले के मवाना तहसील में खोज निकाला।

दूसरी तरफ कई जगहें आज भी अपने पुराने नाम से जानी जाती हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध हैं मथुरा और कुरूक्षेत्र। ये जगहें आज भी महत्वपूर्ण तीर्थस्थल हैं। इन जगहों के माहात्म्य का वर्णन करते हुए पुस्तकें लिखने की एक पुरानी परम्परा है। कुरूक्षेत्र का वर्णन हमें आइने अकबरी में भी मिलता है। दिल्ली का एक हिस्सा मध्यकाल में भी इन्दरपट नाम से जाना जाता था। इसलिए इन जगहों को पहचानना काफी आसान था।

III
खुदाइयों की रिपोर्ट

महाभारत में वर्णित जगहों की पहचान हो जाने के बाद प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता श्री बी.बी. लाल ने 1950 के दशक में महाभारत से जुड़ी जगहों की खुदाई की। इन खुदाइयों की रिपोर्ट 'एंशिएंट इंडिया' नामक पत्रिका के अंक 10 और 11 में प्रकाशित हुईं। हम उस रिपोर्ट का सारांश प्रस्तुत कर रहे हैं।

> *"हस्तिनापुर (29°9′ उत्तरी अक्षांश और 78°3′ पूर्वी देशान्तर) उत्तर प्रदेश के मेरठ ज़िले के मवाना तहसील में है।*
>
> *जब कोई हस्तिनापुर जाता है तो पूर्वी क्षितिज की ओर कई टीले नज़र आते हैं। कई जगहों पर तो ये टीले आसपास की ज़मीन से लगभग 60 फीट ऊंचे हैं। टीले पर चढ़कर गंगा नदी को देखा जा सकता है जो लगभग पांच मील दूर है। पुराने ज़माने में नदी पास में बहती थी। हस्तिनापुर के खण्डहर नदी के पुराने तट के पास लंबाई लिए हुए फैले हैं। बस्ती और ज़्यादा बड़ी रही होगी। खुदाई से पता चलता है कि गंगा नदी बस्ती का एक बड़ा हिस्सा बहा ले गई।*

ऐसा लगता है कि प्राचीन काल में एक ही टीला रहा होगा। बाद के युगों में बरसात के पानी के कटाव से इन टीलों के बीच नालियां बन गईं। टीलों के ऊपर जैन और आर्य समाज के मन्दिर बने हुए हैं।

पुरास्थल का काल विभाजन

हस्तिनापुर के टीलों में चार जगह ट्रेंच खोदे गए। वहां पांच अलग-अलग अवधियों में लोगों के निवास के प्रमाण मिले हैं।

प्रथम कालखण्ड

प्राकृतिक मिट्टी के ऊपर घर बनाने वाले ये लोग लगभग 1400 ईसा पूर्व में एक छोटे से इलाके में बस गए। ये लोग 'ओकर कलर्ड पौटरी' (OCP, गेरूए भांड) नामक एक विशेष किस्म के मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे। इस कालखण्ड से घरों के ढांचे नहीं मिले हैं। शायद निचले स्तर पर सीमित खुदाई के चलते ऐसा हुआ हो। इस कालखण्ड के अंत में यह बस्ती उजड़ गई।

द्वितीय कालखण्ड

लगभग 1100 ईसा पूर्व में यहां पर फिर से लोग बसे। इस काल के लोगों की सबसे महत्वपूर्ण पहचान पेंटेड ग्रे वेयर (PGW, चित्रित घूसर मृद्‌भांड) नामक मिट्टी के बर्तन थे। चिकनी मिट्टी से बने ये पतले बर्तन ज़्यादातर घूसर रंग के होते थे। ऐसे बर्तन सबसे ज़्यादा कटोरे और थाली के आकार के हैं।

इस काल में लोग मिट्टी और कच्ची ईंटों के मकान बनाते थे। मिट्टी के टुकड़ों पर बांस की छाप से ऐसा लगता है कि लोग लकड़ी का ढांचा बनाकर उस पर मिट्टी की पुताई करते थे। इस काल में हस्तिनापुर के वासी तांबे के औज़ारों का प्रयोग करते थे। तांबे के तीर-शीर्ष तथा अन्य औज़ार पाए गए हैं। लोहे का कोई औज़ार नहीं मिलता है। केवल इस काल की ऊपरी परतों में लोहा गलाने से बनने वाले स्लैग मिलते हैं। ऐसा लगता है कि वे लोग पत्थर के बांटों का प्रयोग करते थे। कांच की चूड़ियां तथा मिट्टी की लघु-मूर्तियां भी पाई गई हैं। इस काल के अन्य छोटे-मोटे सामान हैं - अगेट, सूर्यकांत मणि और कॉर्नेलियन जैसे पत्थरों से बने मनके और हड्डियों के उपकरण।

खुदाई में चावल के जले हुए दाने भी पाए गए हैं। जानवरों की हड्डियों के पाए जाने के विषय में पुराविद् लिखते हैं, "यहां पर पाए गए जानवरों की हड्डियों के अवशेषों से उस युग की अर्थ व्यवस्था एवं भोज्य पदार्थों का अन्दाज़ लगता है। कूबड़दार गाय-बैलों, भैंसों, भेड़ों और सूअरों की जली हुई हड्डियां जिन पर काटे जाने के स्पष्ट निशान



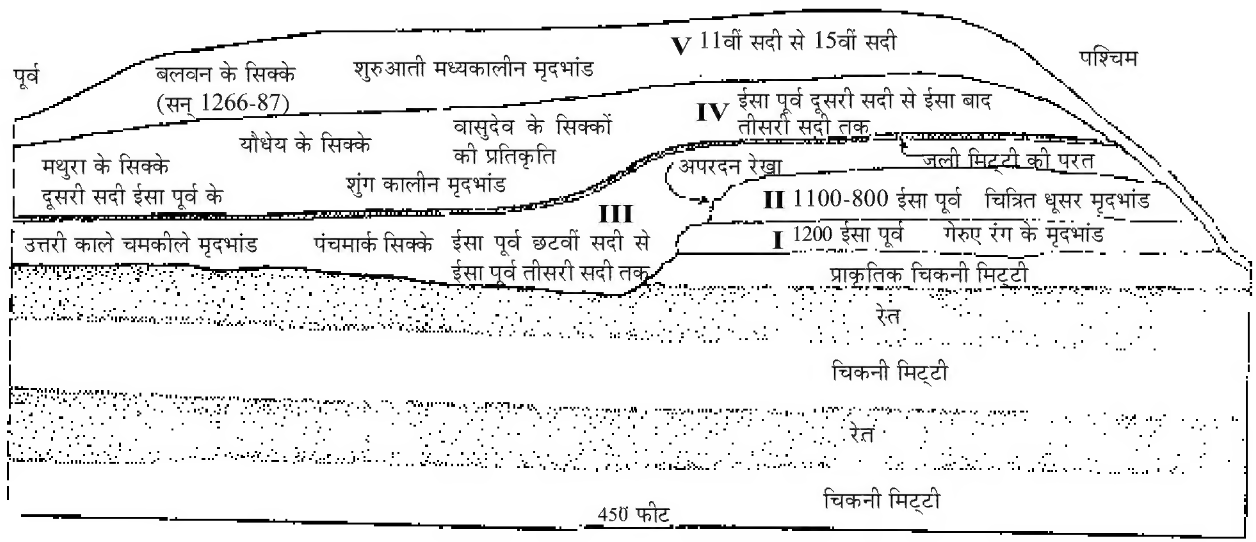
चित्रित धूसर मृदभांड - हस्तिनापुर, अहिछत्र, तिलपत, पानीपत आदि स्थानों से तश्तरियों और प्यालों के रूप में चित्रत धूसर भांड पाए जाते हैं। संभवतः इन उच्च श्रेणी के बर्तनों का उपयोग विशेष अवसरों पर किया जाता था।

हैं, प्रमाणित करते हैं कि इन्हें भोजन के लिए मारा गया था। ध्यान देने की बात है कि गोमांस का प्रयोग बाद के युगों में प्रचलित नहीं रहा या उसे हेय दृष्टि से देखा जाने लगा।"

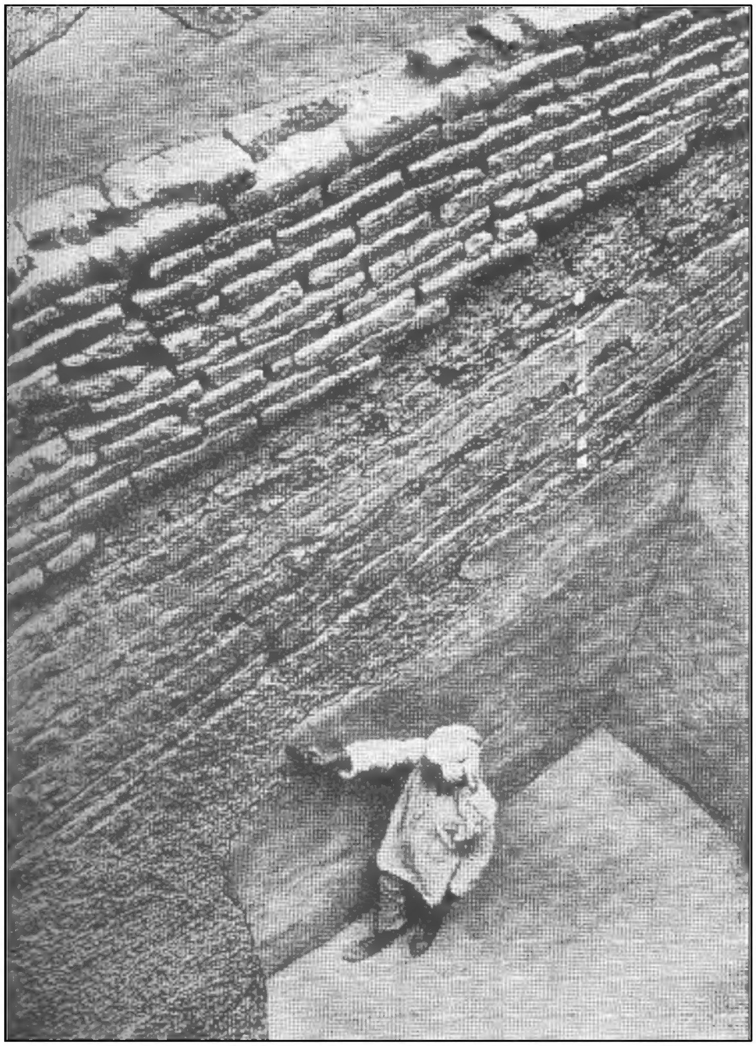
गाय-बैल और भैंसों की हड्डियां बड़ी संख्या में मिलने से यह स्पष्ट है कि गोपालन एक महत्वपूर्ण पेशा रहा होगा। लेकिन यह समाज कृषि पर ही आधारित था। लोग हिरण का भी शिकार करते थे। उनके सींग से बनी कई चीज़ें पाई गई हैं।

घोड़ों के कंकाल का पाया जाना एक महत्वपूर्ण बात है क्योंकि हम जानते हैं कि हड़प्पा सभ्यता के लोग घोड़े से परिचित नहीं थे। लिखित स्रोत बताते हैं कि घोड़ा आर्यों के दैनिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग था। यदि हम चित्रित धूसर मृद्भांड के युग को प्रारम्भिक आर्यों से जोड़ें तो घोड़ों के कंकाल एक महत्वपूर्ण खोज बन जाते हैं। चूंकि खुदाई कुछ टीलों के छोटे से हिस्से में हुई, इसलिए संभव है कि भविष्य में और भी कई चीज़ें मिलें। इस कालखण्ड की तिथि 1100 ईसा पूर्व से 800 ईसा

1950-52 के दौरान हुई खुदाई के बाद हस्तिनापुर टीले के क्रॉस सेक्शन



इस रेखाचित्र में उत्खनन से प्राप्त विभिन्न स्तरों की जानकारी दी गई है। प्राकृतिक मिट्टी के ऊपर सबसे पहले गेरुए रंग के मृदभांड के अवशेष मिलते हैं। यह प्रथम कालखंड है। फिर उसके ऊपर चित्रित धूसर मृदभांड कालीन अवशेष मिलते हैं। इस काल के अंत में आई बाढ़ न केवल बसाहट के अंशों को बहा ले गई बल्कि उसके भी नीचे दबे गेरुए रंग के बर्तन वाले काल के अवशेष और उसके भी नीचे की प्राकृतिक चिकनी मिट्टी की परत को भी बहा ले गई। उसके कुछ समय पश्चात तीसरा कालखंड शुरू होता है जिसे उत्तरी काले चमकदार मृदभांड का काल कहा जाता है। इसी काल में शहरीकरण के संकेत (जैसे - सिक्के, पकी ईंटें आदि) मिलते हैं।



अपरदन रेखा - हस्तिनापुर उत्खनन के दौरान कालखंड-दो के बाद दिखाई देने वाली अपरदन रेखा। खाई में खड़ा आदमी अपरदन रेखा पर हाथ रखकर उसे इंगित करने की कोशिश कर रहा है। और विस्तार से समझने के लिए क्रॉस सेक्शन देखिए। अपरदन रेखा के ठीक ऊपर कालखंड-तीन के स्तर दिखाई दे रहे हैं जिसमें एक दीवारनुमा संरचना भी दिखाई दे रही है।

पूर्व तक है। इस युग का अंत एक भयानक बाढ़ से हुआ जिसके चलते यह जगह निर्जन हो गई।

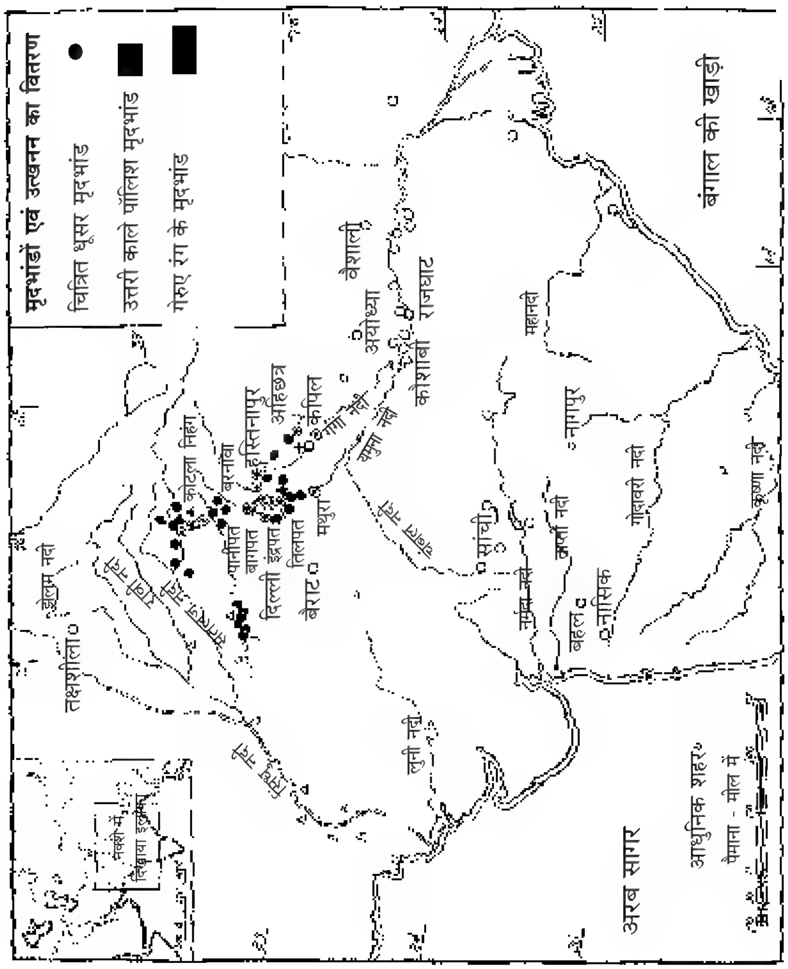
बाद के कालखण्ड

धूसर मृद्‌भांड का प्रयोग करने वाले लोगों के चले जाने के बाद एक बार फिर हस्तिनापुर में लोग बसे। वे एक खास किस्म के मिट्‌टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे जिसे नॉर्दर्न ब्लैक पौलिश्ड वेयर (NBP, उत्तरी काले चमकीले मृद्‌भांड) के नाम से जाना जाता है। इस काल में पक्की ईंटों के मकान बनाए जाते थे। नालियों की व्यवस्था, वलय कूपों का होना, इस युग में योजनाबद्ध आवास व्यवस्था को दर्शाता है। इस काल में लोहे का प्रयोग होने लगा। पहली बार सिक्कों का भी प्रयोग हुआ। मिट्‌टी की लघु मूर्तियां बड़े कलात्मक ढंग से बनाई जाने लगीं। बड़ी संख्या में कीमती पत्थरों का भी प्रयोग होने लगा। इस कालखण्ड के अन्त में भयानक आग से पूरी बस्ती जल गई। इस संस्कृति का काल ईसा पूर्व छठी सदी से ईसा पूर्व तीसरी सदी तक निर्धारित किया गया है।

कालखण्ड चार में फिर से लोग हस्तिनापुर में बसे। इस काल के सभी घर पक्की ईंटों के बने थे। कालखण्ड पांच में दुबारा से यह जगह बसी जिसका काल ग्यारहवीं सदी का है।”

श्री बी.बी. लाल ने हस्तिनापुर के अलावा अहिक्षत्र, कंपिल, मथुरा, बागपत, बरनावा, कुरूक्षेत्र, पानीपत, तिलपत और इंद्रप्रस्थ जैसी जगहों में भी छोटी खुदाइयां की। इनमें से कई जगहें महाभारत में महत्वपूर्ण हैं। इन सब जगहों पर चित्रित धूसर मृद्‌भांड (PGW) से जुड़ी संस्कृति के अवशेष पाए गए हैं। इस आधार पर श्री लाल ने यह माना कि महाभारत कालीन समाज और चित्रित धूसर मृदभांड (PGW) की संस्कृति एक है। हस्तिनापुर में भयानक बाढ़ आने से पेंटेड ग्रे वेयर संस्कृति नष्ट हो गई। महाभारत में भी राजा निचक्षु के ज़माने में हस्तिनापुर में बाढ़ की कथा आती है और यह बताया जाता है कि इसके बाद उन्होंने अपनी राजधानी हस्तिनापुर त्याग कर कोशांबी में बना ली। कोशांबी में भी शुरुआती दौर में चित्रित धूसर मृद्‌भांड पाए गए हैं।

श्री बी.बी. लाल ने यह भी बताया कि आधुनिक घग्घर और सरसुति के किनारे भी पेंटेड ग्रे वेयर प्रयोग करने वाली संस्कृतियों के अवशेष मिले हैं। ये नदियां ही प्राचीन काल में सरस्वती नदी के नाम से जानी जाती थीं। वेदों के अध्ययन से यह पता चलता है कि सरस्वती नदी के आसपास के इलाके प्रारम्भिक आर्य संस्कृति के केन्द्र थे। बाद में इस संस्कृति का केन्द्र हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में आ गया।


मृद्भांडों एवं उत्खनन का वितरण
चित्रित धूसर मृद्भांड
उत्तरी काले पॉलिश मृद्भांड
गेरुए रंग के मृद्भांड
नक्शे में दिखाया इलाका
तक्षशिला
झेलम नदी
कोटला निहंग
बरनावा
हस्तिनापुर
अहिच्छत्र
कंपिल
पानीपत
बागपत
इंद्रपत
तिलपत
दिल्ली
बैराट
मथुरा
गंगा नदी
यमुना नदी
अयोध्या
वैशाली
कौशाम्बी
राजघाट
सांची
नर्मदा नदी
ताप्ती नदी
बहल
नासिक
नागपुर
महानदी
गोदावरी नदी
कृष्णा नदी
लूनी नदी
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
आधुनिक शहर
पैमाना - मील में

IV
महाभारत का काल निर्धारण

ऊपर की चर्चा से स्पष्ट है कि श्री बी.बी. लाल चित्रित धूसर मृद्भांड संस्कृति को महाभारत काल से जोड़ते हैं। इस समझ के लिए उन्होंने जो कारण बताए हैं हम उनका मूल्यांकन करेंगे।

पिछले 50 वर्षों में गंगा घाटी में काफी जगह खुदाई हुई है और OCP, PGW तथा NBP काल के बारे में हमें काफी नई जानकारी उपलब्ध है। पुरातत्वज्ञों द्वारा स्वीकृत कालक्रम निम्नानुसार है:

OCP - 1700 से 1100 ईसा पूर्व। माना जाता है कि यह हड़प्पा सभ्यता के अंत के बाद सिंधु नदी के पूर्व में फैली। यह एक ग्रामीण समाज था जो खेती और पशुपालन पर आधारित था। वे लोग तांबे की सामग्री बनाते थे मगर लोहे से अनभिज्ञ थे।

BRW- OCP काल के अंत में काले व लाल भांड (ब्लैक एण्ड रेड वेयर- BRW) बनाने वाले लोग प्रभावी हुए। इनका समय 1100 से 900 ईसा पूर्व बताया गया है। इस काल के अंत में इन काले-लाल भांड के साथ साथ एक नई तरह के मृद्भांड बनने लगे थे जिसे हम चित्रित धूसर भांड या PGW कहते हैं।

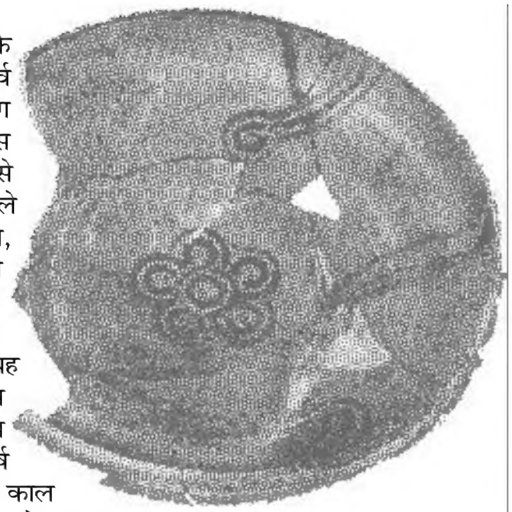
PGW- इसका कालखण्ड लगभग 900 से 500 ईसा पूर्व निर्धारित किया गया है। इस काल की खासियत है कि इस में लोहे के अस्त्रों का उपयोग काफी फैल गया था। यह भारत में लौह-काल की शुरुआत है। इस संस्कृति का प्रभाव-क्षेत्र पूर्व में इलाहाबाद तथा पश्चिम में हरियाणा प्रांत तक फैला था।

NBP - यह काल लगभग 500 ईसा पूर्व में शुरू होता है और 100 ईसा पूर्व तक रहा। यह विकसित शहरी समाज का काल था और पूरे उत्तर भारत में एक सांस्कृतिक एकरूपता का काल है।

इस तरह हम देखते हैं कि बी. बी. लाल के निष्कर्षों में कुछ बदलाव की ज़रूरत है। पहला तो यह है कि चित्रित धूसर भांड का काल 1100 ई पू से नहीं बल्कि 900 ई पू से मानना पड़ेगा। दूसरा यह कि यह काल लौह युग के अंतर्गत आता है न कि कांस्य (या ताम्रपाषाण) युग में।

जो भी हो उत्खनन से यह तो स्पष्ट है कि हस्तिनापुर में 1400 ईसा पूर्व से पहले मनुष्य नहीं रहते थे। इसलिए महाभारत का काल 1400 ईसा पूर्व से पहले का नहीं हो सकता था। ओकर कलर्ड पौटरी का इस्तेमाल करने वाले लोग पहले पहल हस्तिनापुर में बसे। ये लोग एक ताम्र-पाषाण युगीन संस्कृति से जुड़े थे

और संभवतः घुम्मकड़ थे। इसके बाद शायद लगभग 900 ईसा पूर्व में चित्रित धूसर मृद्भांडों का प्रयोग करने वाले लोग यहां बसे। इस संस्कृति के अवशेष महाभारत से जुड़े कई अन्य स्थलों से भी मिले हैं। जैसा कि हमने पहले कहा था, लाल मानते हैं कि महाभारत इसी काल से जुड़ा है। यह देखते हुए कि ओसीपी के क्षेत्र और महाभारत के क्षेत्रों में मेल नहीं है और यह देखते हुए कि महाभारत का क्षेत्र और चित्रित धूसर भांड का क्षेत्र मेल खाते हैं, लाल का यह निष्कर्ष वाजिब लगता है। इसके बाद का काल एनबीपी का था जो कि स्पष्ट रूप से बुद्ध तथा उनके बाद के काल की ओर इशारा करता है। इस काल से महाभारत को जोड़ना उचित नहीं होगा।



साहित्यिक स्रोतों के आधार पर कई इतिहासकारों ने यह कल्पना की थी कि वैदिक युग के बाद महाकाव्य युग की शुरुआत हुई। यह युग छठी सदी ईसा पूर्व में बुद्ध के युग के आने पर समाप्त हुआ। बुद्ध के युग में साहित्यिक स्रोत सोलह महाजनपदों का वर्णन करते हैं। इन स्रोतों में कुरू जनपद कोई महत्वपूर्ण जनपद नहीं था। बाद के ऐतिहासिक युगों में भी कुरू जनपद कभी भी महत्वपूर्ण नहीं रहा। यही कारण है कि श्री बी.बी. लाल ने चित्रित धूसर मृद्भांड के उपयोग वाले काल को महाभारत युग से जोड़ कर देखा। इस संस्कृति का केन्द्रीय क्षेत्र भी कुरु-पांचाल क्षेत्र ही था। अतः उस युग में शायद कुरू जनपद महत्वपूर्ण रहा हो।

लेकिन यदि चित्रित धूसर मृदभांड का प्रयोग करने वाले समाज को महाभारत से जोड़ा जाए तो कई समस्याएं सामने आती हैं। सबसे पहले तो हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि महाभारत का काल 900 ईसा पूर्व से 600 ईसा पूर्व के बीच है। अतः हमें महाभारत के काल के बारे में अतिशयोक्ति-पूर्ण गणनाओं को त्यागना पड़ेगा।

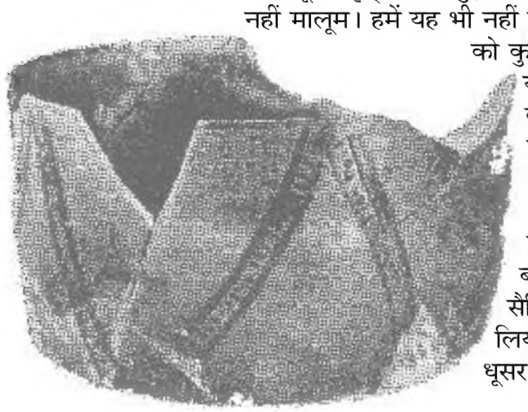
दूसरा, हमें इस बात पर भी गौर करना होगा कि चित्रित धूसर मृदभांड संस्कृति के लोग छोटे-छोटे मिट्टी के मकानों में रहते थे। ज़्यादातर लोग खेती या पशुपालन करते थे। न पक्के ईंट के मकान, न सिक्के, न महल, न शहर, न शिल्पकार, न बड़े व्यापारी। अगर हम लाल की बात मानें तो हस्तिनापुर के

लोग महाभारत के काल में लोहे तक का उपयोग नहीं जानते थे। ऐसे में महाभारत सीरियलों में जिस तरह के समृद्ध समाज दिखाते हैं, वे केवल कल्पना में ही संभव थे।

मिट्टी के घरों में रहने वाले लोग भला सालों साल चलने वाले महंगे यज्ञ कैसे करते होंगे? महाभारत के यज्ञों में लाखों सैनिकों और शिल्पकारों को हिस्सेदारी करनी पड़ती थी। इन लाखों सैनिकों और शिल्पकारों के खाने के लिए दसों लाख किसानों को अनाज उपजाना होगा। धूसर मृद्भांड संस्कृति के भौतिक जीवन में महाभारत में वर्णित विशाल सेना या शिल्पकारों का होना संभव नहीं प्रतीत होता। तो क्या मयासुर का महल सिर्फ एक माया थी?

हस्तिनापुर में पक्के ईंट के भवन बने, सिक्कों का प्रचलन भी हुआ, विविध शिल्पकार भी हुए, व्यापारी हुए, लेकिन यह सब बाद के एनबीपी काल में जो कि मौर्यों के काल से मेल खाता था। इसका यह मतलब निकलेगा कि महाभारत के कुछ अंश तो चित्रित धूसर भांड काल से संबंध रखते हैं, व कुछ और बाद के कालों से। पिछले अंक में हमने पाया था कि गोग्रहण पर्व का कथानक एक पशुपालक कबीलाई समाज की ओर इशारा करता है जबकि राजसूय पर्व के अंश एक स्थाई ग्रामीण समाज की ओर, और राज्यलाभपर्व जिसमें इन्द्रप्रस्थ का वर्णन है एक विकसित शहरी समाज का द्योतक है। यानी पुरातत्व हमें यह मानने पर विवश करता है कि महाभारत किसी एक काल की उपज नहीं है बल्कि उसमें लगभग 1000-1200 वर्षों की सामग्री मिली हुई है।

जब यह बताया जाता है कि हस्तिनापुर में महाभारत युग के अवशेष पाए गए हैं तो पाठक यह कल्पना करता है कि महाभारत सत्य है और युधिष्ठिर या दुर्योधन ऐतिहासिक पात्र थे। जैसा कि हमने पहले कहा पुरातत्व की दृष्टि से ईसा पूर्व तीसरी सदी से पहले का काल अनाम लोगों का काल है। ज्ञान मौखिक परम्परा का अंग था। धूसर मृद्भांड से जुड़ी संस्कृति के निर्माताओं के नाम हमें नहीं मालूम। हमें यह भी नहीं पता है कि क्या वे अपने आप को कुरु-पांचाल जनपद के मानते थे या नहीं। इसलिए किसी कालखण्ड विशेष में खास किस्म के मिट्टी के बर्तनों का इस्तेमाल महाभारत की सत्यता का प्रमाण नहीं माना जा सकता। उदाहरण के लिए महाभारत की कथाएं बताती हैं कि मनिपुर से आए सैनिकों ने महाभारत युद्ध में हिस्सा लिया। लेकिन वहां की खुदाइयों में धूसर मृद्भांड प्रयोग करने वाली किसी



संस्कृति का अवशेष नहीं मिला है। या हम यह कल्पना करें कि कुरूक्षेत्र के मैदान में मारे गए करोड़ों सैनिकों, घोड़ों और हाथियों की हड्डियां मिलेंगी, या वहां की मिट्टी रक्त से सनी होगी तो वैसा कुछ भी नहीं मिला है।

हमारा तात्पर्य यह है कि श्री बी.बी. लाल की खुदाई से हस्तिनापुर जैसी जगहों पर ईसा पूर्व 1400 से लेकर मध्यकाल तक रहने वाले लोगों की जीवन पद्धति का पता चलता है। इनमें से किसी कालखण्ड को महाभारत से जोड़ देना तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता। हम महाभारत की साहित्यिक विवेचना करने वाले विद्वानों की समझ से अवगत हैं कि महाभारत की रचना की शुरुआत लगभग 1000 ईसा पूर्व से हुई और इसे विशिष्ट लिखित रूप लगभग 500 ईस्वी में मिला। फिर तो महाभारत का पुरातत्व प्राचीन भारत के 1500 वर्षों का पुरातत्व होगा।

इस लेख में हमारा उद्देश्य महाभारत कथा का सत्यापन करना या उसे कपोल कल्पना कहना नहीं है। हमारा कहना बस इतना है कि महाभारत जैसी गाथाएं या महाकाव्य किसी एक काल के नहीं बल्कि एक जीवंत व परिवर्तनशील परंपरा के अंग हैं। हम उनका मिलान पुरातत्व जैसे अन्य साक्ष्यों से करके यह पता करने की कोशिश कर सकते हैं कि कौन सा अंश किस काल से संबंधित रहा होगा। लेकिन इस प्रयास की उपयोगिता सीमित ही है। इससे ज़्यादा उपयोगी होगा अगर हम उस जीवंत परंपरा के मूल बिंदु को पकड़ने का प्रयास करें। हो सकता है उससे जो प्रकाश मिलेगा वह ज़्यादा सार्थक होगा। यह काम हम अगले अंक में उन महान मनीषियों की मदद से करेंगे जिन्होंने महाभारत का समग्र अध्ययन किया है।

पी. के. बसंतः दिल्ली में स्थित जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय में इतिहास पढ़ाते हैं।
सी. एन. सुब्रह्मण्यमः एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम से जुड़े हैं।